भारतीय कला के मुख्य तत्त्व

भारतीय कला भारतवर्ध के धर्मगत तत्त्व, तत्वज्ञान और संस्कृति का दर्पण है। भारतीय जन जीवन की पुकार व्याख्या कला के माध्यम से हुई है। यहां के लोगों का रहन-सहन कैसा था, उनके भाव व्याख्या था, देवताओं के विषय में उन्होंने व्याख्या सीखी थी और पंचभूतों के धरती पर उन्होंने कितना निर्माण किया था इसका आचरण लेखा-सोचा भारतीय कला में सुरक्षित है। वास्तु, शिल्प, मूर्तियों, चित्र, काल्पनिक प्रतिमा, मुद्राभाजन, वंदनमंत्र, काल्पनिक कला, मस्तिष्कमंत्र, वस्त्र संस्कृति और वनस्पति के रूप में भारतीय कला की सामग्री प्रभुत्व मात्रा में पायी जाती है। देश के प्रस्तुते सभा में कला के निर्माण की ध्वनि मुनाई पहली है। एक युग से दूसरे युग में कलात्मक के केंद्र दिशा-दिशाओं में छिटकते रहे, किन्तु यह बिंदु सामग्री सम्पूर्ण रूप से भारतीय कला के ही आदर्श गढ़ है।

भारतीय कला को दीर्घकालीन रूप से रचना उचित है, जिसमें देश के प्रस्तुत भू मात्र में सपना साध्य आर्यित किया है। इस रूप समुद्र में भ्रमने जातियों ने माना लिया है, किन्तु इसकी सूत्र प्रेरणा और विश्वभार भारतीय ही है। जब मनुष्य कला संस्कृति का प्रसार समुद्र पर चार पर्वतों के उस पार हुआ तब भारतीय कला के रूप ग्रह और उसके प्रभु हुए। तुम्हारे से वह सामग्री आश्रम भी नवीनिकांश में सुस्पर्शित है। और भारतीय कला के यथा-प्रवाह का क्रय वही है। द्वीपातर या हिंदुस्तान से के कर से-चूना या मध्य-पश्चिम ता का विशाल भू-क्षेत्र भारतीय कला की मेघबृहत से उत्पन्न फुहारों से भर गया। वह ग्रन्थों निम्नलिखित गम्भीर और विश्वस्त था। इससे आश्रम भी आश्वस्त होता है। भारतीय कला के संघर्ष अविश्वस्त अवस्थान के लिए यह आश्वस्त है कि भारतीय धर्म, वर्ण और संस्कृति के साथ मिलकर उसे देखा जाय। जिसकी सामग्री वेद, पुराण, काव्य, पिढ़ी, आयुग आदि नानाविवर्त भारतीय साहित्य में पायी जाती है।

तिथि-क्रम:

कला की यह सामग्री देश और काल दोनों में महा विश्वकृत है। इसका आरम्भ सिवुर मूलतया में तृणीय साहसाव्रत्ि ईश्वी पूर्व से होता है और लगभग 5 सहस्र वर्षों तक इसका इतिहास पाया जाता है। इस तिथि-क्रम का लगभग गुमलिपट्र व्राचार इस प्रकार है।

1. सेवुण सम्भवता की कला - लगभग 2500 - 1500 ईं पूर्व ।
2. वैदिक सम्भवता - लगभग 2000 - 1000 ईं पूर्व ।
3. महाजनपद युग - लगभग 1200 - 600 ईं पूर्व ।
4. शैलनाग तंत्र युग - लगभग 600 - 326 ईं पूर्व
<table>
<thead>
<tr>
<th>संख्या</th>
<th>कार्य</th>
<th>योग</th>
<th>तार</th>
<th>वर्ष</th>
<th>इंग्लिश तारिख</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>5.</td>
<td>मोह युग —— महाभाग —— १२५ — १७४ ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>6.</td>
<td>गुर्ग काल —— महाभाग १६४ — ७२ ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>7.</td>
<td>काराव बंज —— महाभाग —— ७२ — २७ ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>8.</td>
<td>जान्हीलोक — युग और महाभाग युग —— महाभाग २५० — १५० ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>9.</td>
<td>शाहरात शक —— महाभाग प्रथम ५० पूर्व — ३६० ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>10.</td>
<td>सातवाहन शक —— महाभाग २०० ई। ०० — २०० ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>11.</td>
<td>शक कुत्वाल —— महाभाग ८० ई। ००—६४६ ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>12.</td>
<td>चार्गः देश का इतिहासकार —— तीसरी शती ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>13.</td>
<td>गुर्ग युग —— महाभाग ३१६ ई। ०० — ६०० ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>14.</td>
<td>चालुक्य युग —— महाभाग —— ५५० ई। ०० — ६४२ ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>15.</td>
<td>राजपूत युग —— महाभाग ७५२ ई। ००—६७२ ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>16.</td>
<td>प्रलय शक —— महाभाग ६००—७५० ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>17.</td>
<td>चोल युग —— महाभाग ६००—१०४२ ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>18.</td>
<td>पाण्डव शक —— महाभाग १२५१ ई। ०० — १३१० ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>19.</td>
<td>होयसल बंज —— १२—१३ वीं शती</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>20.</td>
<td>विजयनगर बंज —— महाभाग १३३६—१५६५ ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>21.</td>
<td>उड़ीयभा के गंग और केसरी बंज —— ११वीं से १३वीं शती</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>22.</td>
<td>मध्य का पाल और बंगाल का सेवक शती —— महाभाग ८वीं से १२वीं शती</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>23.</td>
<td>मुगल प्रतिहार बंज —— ७५०—७५० ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>24.</td>
<td>तमील बंज —— ६००—१००० ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>25.</td>
<td>महाइयभा —— १०४५—१२०० ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
<tr>
<td>26.</td>
<td>लोकसंगीत बंज —— ७६५—१२०० ई। ००</td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
<td></td>
</tr>
</tbody>
</table>

कला के आंदोलन के संग्रह में जन्म लेकर फूलते फलते श्रीर वृद्ध को प्राप्त होते हैं। जन
तारों की भांति वे अपना बेग इससे युग की प्रतीकाओं को तौन कर बिलास भो देते हैं। कला के तिथि-
श्रेणी को इसी उदार भाव से देखना चाहिए। राजाओं के छन या नृत्य और दासों के पर्यंत साथ के साथ कला का
प्रवाह तप नहीं हो जाता। उसके जिस तिथि-श्रेणी का उल्लेख है, उसमें विशेष भांति से लेकर नया युग
बंज के पूर्व तक भारतीय कला का वायू युग है। तुहारात्ती संघर्ष कला से हर्ष के समय तक उसका मध्य
युग है, जो उसके समुद्री युगन का युग है। इसके भी दो भाग हो जाते हैं। एक के विशेष उदाहरण, युग,
काराब और पूर्व सात-बाहू युग की महान कला कृतियाँ है। इस पूर्व युग में कला के बंडुक भिन्न रूप
गुरु के उद्वप्त अवधि में उद्वप्त द्वे रूप हैं। सातात्त्व, भर्तृत, सांती, योगनाथ, अभियात्त, भाजा, उसी के रूप हैं। इस
प्रासिस स्थान

प्रासि स्थान और तिथि क्षम ये बेबी कला वस्तु के अध्ययन में सहायक होते हैं। इसका प्राथमिक प्रयोग होता है और साधारण से प्रासि स्थान सम्बन्धी सूचना का संग्रह करना चाहिए। प्रतिकांश अवशेषों और वस्तुओं के प्रासि स्थान विचित्र होते हैं। उनके द्वारा कला की वस्तुओं का संग्रह सुविधाजनक हो जाता है। इसके गतिक अवसर और वस्तु धंधों के लिए अन्तर की जाति और जेंसेस से ही उनसे संबंध का कोई संबंध होता है। उदाहरण के लिए इस क्षेत्र में की जरुर हैं। उदाहरण के लिए इस क्षेत्र में की जरुर हैं।
रामियां वा सुगन्ना (Crcrite) पत्थर, कहीं कुड़वा (Granite) और कहीं बुरसिया पत्थर (Late rite) और कहीं सेल लड़ी या संगजराहत (Alabaster) और कहीं संगमरमर (संस्कृत मुट्टा शैल) काम में लाया गया। इस प्रकार भिन्न २ पत्थरों की चाल से कलात्मक सामग्री के स्थानीय स्वरूपों का निर्माण मिल जाता है।

काम निर्माण

वस्तुओं का काम निर्माण नैय: उसके लेखों के आदार पर किया जाता है। जैसे स्तंभ, मंदिर, सीलामट या मंदिर का चौकी पर उक्तिय़ों लेख सम्बन्धित सामग्री के काल की भूमिका देता है। इस साधन के ग्रंथी में शैली ही समय का संकेत बताती है। पुरातन की खुदाई में प्राचीन सामग्री को जैसे लेख, मूर्ति, भुजपत्र, जिज्ञासों को पूर्वपरिय स्तरों के आदार पर जाँच कर उनका समय निर्धारित करते हैं। कला सामग्री के बहिर्ज्ञ स्थापना का उद्देश्य उसकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अवधारणा करता है जिसके लिए प्राचीन-स्थाप, समय और शैली इन तीनों के परिचय की आवश्यकता होती है।

ग्रह्य-व्यञ्जना

कलात्मक वस्तु के बहिर्ज्ञ परिशोध हमें उस बिंदु पर ले जाती है, जहां उसकी त्रितरंग परिक्रमा वा ग्रह्य की व्यञ्जना का आरम्भ होती है। प्रत्येक कला वस्तु दिये मनोभाव भाव का स्थूल प्रतीक है। पृथ्वी संभित के प्रारंभ कला ग्रह्य के ४, ५ तथा ६ बंद भाग माने गए हैं। भारतीय सौंदर्य शास्त्र के ५५ मुख्य कला ग्रह्य के ४, ५ तत्व या बंद माने गए हैं। ये १. प्रथम, २. प्रथम, ३. चतुं, और ४. शब्द (काल के लिए) या रूप (कला के लिए)।

रस

रस कला का आत्मा है। यह ग्रंथात्म मुख्य है जिसमें शृंगार का स्वरूप मूल्य निकालता है। इसे ही मौलिक, सावधान और प्रत्यक्ष दिया गया कहना चाहिए, जो प्रत्येक संबंधी काल के अनुसार कला कुल में पाया जाता है। मुख्य का मन भावों का समुद्र है। भावों की समस्ति के ही सर उद्योग होता है। मुख्य के मन में जो नाना भाव जन्म लेते हैं, उन्हें ही कला और काला द्वारा व्यक्त किया जाता है। काल के पंडित साहित्यकारों के अनुसार काल में ६ या ८ रस माने गए हैं, जिनके गुण मुख्य भाव हैं। कला कुल तस्कर के मन में भावों का उद्योग होता है। रस और कलाकार सर्वप्रथम प्राप्त होने वाला मनस में रस या भाव विशेष की आराधना करते हैं और फिर उसे शब्द या रूप के द्वारा शूल या हीरे गाढ़ी माध्यम से व्यक्त करते हैं।

ग्रह्य

मन में रस का सरमरण होने पर कवि और कलाकार उस ग्रह्य या विषय को जुटते हैं जिसके द्वारा रस या भाव स्तुति होती है। ग्रह्य का आरम्भ स्तुति या प्रालेख गत विषय से है। भारतीय कला के ग्रंथ-संग्रह के प्रत्यय में नाता देव और देवियों का विस्तार है, जो विश्व की दिव्य और भौतिक शक्तियों के प्रतीक है। इन देव-देवियों के विषय में वेदीं और पूर्णाणों में हनें महत्त्वान्वि हैं। उनका उद्देश्य ज्योति और तम, सत और भ्रम, प्रमुख और मूल्य के बीच की व्यञ्जना करता है। प्राचीन
भी कामुदेव गरजन अप्रवाल

परिभाषा में इस इन्द्र को देवासुर कहा गया है, अर्थात् देवं और श्रुतं के शाॅवत संप्राम की परिकल्पना से संग्राम इतिहास की काल विशेषत घटनायें नहीं। किन्तु दिव्य भावों की निर्यात समाधि है, जो देव और काल में सदा और सतत प्रतिष्ठ होती है। इसके विवेत वृत्त, मार महिला, विषुपुरुष और तारकासुर श्रृव्या या अत्यधिक के प्रति है। अर्थ ही कला का साधन ज्ञान है। प्रसंक तत्त्व की क्रिया इनके लिए पर सबकी अर्थ परिणाम रहती है। उसे उसी प्रकार पहला चाहिए जिस प्रकार की प्रक्षे-बताने के लिए उसके निर्माणों ने उसे निका था। भारतीय कला के संस्कृत उद्देश्य के प्राण के लिए उसके अर्थ का परिचय का ज्ञान साहित्यिक श्रृव्यार्थ के समीक्षक के जाती है। जैसे चक्रपुर्ण घट, स्वास्तिक, पद्म, श्री लक्ष्मी, प्रहट मंगल अथवा ग्रहों तल मंगल जिन्हे एवं गहड़, नाग, यथा दादी कला के प्रतीकों द्वारा अर्थ की प्रतीक कला सर्वत्र एक श्रृव्यार्थ का समीचीन क्रम है।

इन्द्र

पुराणों में कहा है कि यह विष्णु की रचना इन्द्र सृव्यार्थ है। इसके नृत्य में एक विराट इन्द्र तल, लय, या माता है। उसी इन्द्र से सौर्य तत्व के लिए श्रृव्यार्थ सामान्य और संप्रुप्त एवं सन्तुलता तत्व समक्ष का निर्णय दिया जाता है। पद्मशुल्क भारतीय कला की श्रृव्यार्थ अर्थ तल मंगल है। विष्णु का प्रतीक वस्तु प्रमाण सुनियत है। वही कलाकार के लिए प्रमाण या नमूना नवीन है। जिसे वह ध्यान की प्रक्षेप से चित्र में उतारता है और फिर वह अंकन लेखन या वर्णन में लाता है।

रूप या शब्द

कला का चौथा रूप भाव को भौतिक चरमाल पर लाता है। इस तत्व के लिए शब्द और चित्र के लिए रूप कहते हैं। शिला, चित्र, वास्तु को व्यक्त करने के माध्यम शब्द हैं, किन्तु वे सव भावों के भूतक रूप हैं। उनकी प्रत्येक प्रक्षेप होती है। अर्थ और इन्द्रियों के माध्यम से भाव पर प्रभाव धारते हैं। कला के इस तत्व चक्रपुर्ण के समस्त में गोलीमारी जो का अर्थ संप्राणावरण अवगुणित असामान्य समान्त है।

चित्र का महत्त्व

मनोभाव और कला के वाह रूप इन संस्कार को जोड़ने वाला माध्यम कला है। मन के भाव को अभिकाल सौद्वर्ध के साथ मौलिक रूप में प्रकट करना ही कला है। कला के द्वारा मनोभावों की साफ भौतिक पद्धतियाँ पर विशेषता की जाती है। इसी विशेषता के कारण कला मानवीय हृदय के इतनी निकट होती है। जो कुछ मन में है उस कला में भ्राता है किन्तु वस्तुतः ही सौद्वर्ध गुणावरण के साथ जैसे मुक्त संगीत से भी प्रकट भी है रूप से नेत्र त्रस्त होते हैं। अर्थ और भाव हृदय में पुष्ट कर विशेष प्रकार के मूलमन रूप को उपलब्ध करते हैं। सज्जन कला परस्पर रसिक, सहृदय या विशेषण कला के सौर्य का देर तक प्रनुभाव करता है और उसके सूक्ष्म रूपक का पान करना रहता है। इस प्रकार कला की सौद्वर्ध से मुल्य हो सकते हैं जो मानवी शक्ति है, उसे ही संबंध कहते हैं।
भारतीय कला के मुख्य तर्क

सच्ची कला के एक शास्त्र के सत्य है। उसका सौदर्य छोटा नहीं। उसके लक्षण की ध्वनि फिर २ कर मन में आती है। समस्या कला मात्र की शिल्प है, किंतु वह देश शिल्प के प्रमुख है। कलाकार के हृदय में जो देवी प्रभावित आती है वहीं शब्द और रूप एवं अर्थ को दिव्य सौदर्य से प्लावित कर देती है।

अलंकरण

भारतीय कला अलंकरण प्रथाय है। आरम्भ से ही कलाकारों ने अपनी कृतियों को अर्थ के साथ रूप के साथ सजाने के लिए शिल्पकार ने कलाकार के हृदय में आती है। अलंकरण सांग-संज्ञा के अभिव्यक्ति योगदान प्रभाव रूप पद्धतियों की आकृतियों चूंकि, और जल्दी का ध्वनि के साथ एक बैठी हुई है। कलाकारों के हृदय में जो देवी प्रभावित की आती है वहीं शब्द और रूप एवं अर्थ को दिव्य सौदर्य से प्लावित कर देती है।

शोभा और सौदर्य

भारतीय कला के सांग-संज्ञा के अभिव्यक्ति और अर्थ के साथ रूप के साथ सजाने के लिए शिल्पकार ने कलाकार के हृदय में आती है। कलाकार के हृदय में जो देवी प्रभावित की आती है वहीं शब्द और रूप एवं अर्थ को दिव्य सौदर्य से प्लावित कर देती है।

शोभा और सौदर्य के साथ-साथ जो देवी के हृदय में जीवन का जीवन तथा दिव्य सौदर्य में जो देवी के हृदय में जीवन का जीवन तथा दिव्य सौदर्य में जो देवी के हृदय में जीवन का जीवन तथा दिव्य सौदर्य में जो देवी के हृदय में जीवन का जीवन तथा दिव्य सौदर्य में जो देवी के हृदय में जीवन का जीवन तथा दिव्य सौदर्य में जो देवी के हृदय में जीवन का जीवन तथा दिव्य सौदर्य में जो देवी के हृदय में जीवन का जीवन तथा दिव्य सौदर्य में जो देवी के हृदय में जीवन का जीवन तथा दिव्य सौदर्य में जो देवी के हृदय में जीवन का जीवन तथा दिव्य सौदर्य में जो देवी के हृदय में जीवन का जीवन तथा दिव्य सौदर्य में जो देवी के हृदय में जीवन का जीवन तथा दिव्य सौदर्य में जो देवी के हृदय में जीवन का जीवन तथा दिव्य सौदर्य में जो
The Mūlaprāśāda (fig 1) pp.231
The Mülapräṣāda—South wall (fig. 2) pp. 231
Saraswati, western Bhādrā Gūḍhamandapa (fig 4) pp. 231
Cakreśvari—east Bhadra S1106 (fig 5) pp. 231
Jivantswāmi Mahāvira, front karna, west Gūḍhamāṇḍapa (fig. 6) pp. 231
Standing Kāyotsarga, Jīna front karna east
Gūḍhāmnāḍapa (fig. 7) pp. 231
Devakulikas around the Rangamandapa (fig 8) pp. 232
श्री वासुदेव शरण श्रीवाल

मिलता था और जिनके द्वारा श्राधुरिशृष्टि से उसकी रचना होती थी । गुरुकालीन कला शिल्प, चित्र और स्थायित्व इस प्रकार के अलंकरणों से बहुत भरी हुई है । कुपाले कान की कला ईर्दगर्द या विक्रम-कृति पुष्पों से भरी हुई है क्योंकि इस प्रकार के ऐसे में गेरे शरीर बाले पुष्पों में शकों को स्वयं बहुत रची थी ।

सांस्कृतिक जीवन

भारतीय कला की एक विशेषता उसमें श्रद्धा सांस्कृतिक जीवन की सामग्री है । राजा और दोनों के जीवन का ही बुद्ध कर भित्ति किया गया है । कला मानो साहित्यिक कर्मों के व्याख्या प्रस्तुत करती है । कौई बाहे तो कला की सामग्री से ही भारतीय जीवन और रहन-सहन का दिशाही लिख सकता है । भारतीय वेश-भूषण, वेश विश्वास, आर्थिक, वैज्ञानिक, आदि की सामग्री विज्ञ शिल्प भाद्र में मिलती है । कौई भी मिली के मुदता भी इस विषय में गहराई है । उनमें तो सामाजिक जनता को भी स्वाम मिलता है । भर्तृत, सांख्य, धर्मानीति नागरिकी कुंव मादिके महान सूर्यों पर मानों जनता के जीवन की जन साहसी संविधा ही मानों लिखी हुई है । भारतीय कला सदा जीवन को साथ ले कर चली है । बसता है उसमें समाजिक जन जीवन का प्रतीकात्मक पावा जाता है ।

धार्मिक जीवन

देश में समय-समय पर जो महात्मा धार्मिक आंदोलन हुए हैं और जिनमें लोक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है उनमें भी कला को प्रेरणा मिली । उनी को कला के भूमिका में मुख्य है । उस विषय में कला की सामग्री कहीं तो साहित्य से भी धार्मिक गहराई है । यकी नामों का बहुत विषय परिचय भर्तृत, सांख्य, महाराजा की कला में मिलता है । इसी प्रकार उत्तर कुशी के विषय में जो लोक विश्वास था उसका भी उल्लेख घनक माना, भर्तृत, सांख्य ग्रामिक में हुआ है । भिन्न, कल्पवृक्ष, कल्पतार ग्रामिक प्रकरण उसी से सन्न्यस्त हैं जिनका वर्णन जातक, रामायण, महाभारत भाद्र में पाया है । दुनिया वस्तु, पनसाहित्य पाठों में माना हुआ उत्तर मधु, आयुर्विज्ञान राजनीति में माना हुआ लाभ रस, मान, श्रीरा, बाहु और पौलों के ग्रामशास्त्र एवं, स्त्री गुणों के भिन्न मुदता-सक्ति जनम कल्प वृक्ष और कल्प तत्त्वों से दिलाया गया है । वस्तुतः प्रत्येक धार्मिक का तमस्त जीवन ही एक कल्प वृक्ष है जिसकी छाया में वह ब्रतांत बुद्धि के शरीर में फूलता फूलता है । प्रत्येक का मन ही महात्मा कल्प वृक्ष है, कल्पना या संकल्प जिसका सुन्दर रहा है ।

कला के प्रतिकामक विषय

भारतीय कला के जो वर्ष विषय हैं वस्तुतः उसका महात्मा सबसे श्रद्धा है । उनमें भारतीय जीवन और विचारों की व्याख्या ही मिलती है । भारतीय जीवन की पूरी श्रृंखला कला पर पडी है । उससे एक विशेषता तो यह भी कि सामाजिक जनता के धार्मिक विश्वास कला में बहु, महाराज, शिव और विषु के उल्लेख वर्णों के साथ विश्वास परिचय किया है । कौई भी भर्तृत जनता के विषयों के इतना उपर नहीं उठा गया कि उनमें भारतीय प्रभाव का अर्थ हो जाय और वे एक दूसरे से बल्ला जा पड़े । भारतीय धर्म के पूरी वारहकड़में एक भी भुज, ख्यातिव या नारायण विषु का तलवार भी है और दूसरी भी उन अनेक वेदों की पूजा मात्रा भी है जो वातावरण से सम्बन्धित थे और मन, व्रत या यात्रा
भारतीय कला के मुख्य तत्त्व

कहा गया है, जैसे यज्ञमह, नागमह युक्मह, नवीम, सागरमय, धनुमह चवामह, सुरज मह, इत्यादि, खदमह (क्रन्द) रहमह, लक्षमह, चर्ममह, द्रविदमह, वादिद। देवपुरजा के ये प्रकार जैसे लोक में ये वैसे ही कला में भी प्रभावित गया। इस प्रकार महाजन और सामाजिक जन दोनों की धार्मिक मान्यताओं का समादर भारतीय कलाओं में हुआ।

बुद्ध

ऐतिहासिक गौतम बुद्ध का जीवन जैसा भी तथ्यात्मक रहा हो कला में लोकों के बुद्ध का जीवन ही लिया गया है और उसका धर्मीत सम्बन्ध उन प्रौढ़ों के से था जो मानवीय धर्मों से उपर दिये गये की श्रद्धांजलियों का दर्शन संकेत करते हैं। उदाहरण के लिये तुर्गे स्वरूप से बुद्ध की प्रबुद्धता, श्वेत हस्ती के रूप में माया देवी को स्वन और गर्भ अविष्कार। माता की कुश्ति के विरूप जन्म, सत्ता पद, नबीनामन्त्र नामां का प्रथम इन्तन, बुद्धमहाराजिक दोनों द्वारा चार पारियों को ले कर बुद्ध का एक पात्र बनाना, बुद्ध और जन सम्बन्धी प्रतिहार्य या चमकार का प्रदर्शन, नन्द गिरि नामक नक्षत्र हस्ती का दर्शन, सहस्त्रबृहत्तक रूप का प्रदर्शन सिरपरित, वादशाखार धार्मिक प्रमुखता का प्रवर्तन, गहरानिश्चित दोनों के स्वरूप में माता की चर्चना देश, श्रृंगार सोने, चांदी और तांबे की सीडियों से गुदः गुद्धी पर भाना। इत्यादि ये कला के अंतर्गत बुद्ध के स्वरूप के विषय में प्रतीकात्मक कल्पना प्रस्तुत करते हैं जिसका सम्बन्ध ऐतिहासिक बुद्ध से न हो कर लोकों की ध्यान के द्वारा स्वरूप से है।

शिव

सिमुपादी से ले कर ऐतिहासिक गुप्तों तक लिग बिप्रमह या पुरुष बिप्रमह के रूप में शिव का अंतर्गत पाया जाता है। इस दोनों का बिशेष धर्म भारतीय धर्म और तत्त्वज्ञान के साथ जुड़ा हुआ है। एक श्रृंगार लोक वातारों में प्रचलित धर्म के स्वरूपों का प्रश्न किया गया है, इसमें सरी है उसके साथ नव-नये धर्मों को जोड़कर उन्हें धर्म और दर्शन के क्षेत्र में नयी प्रतिरूप हो गई। तत्व का चित्रण करने वाले धर्माध्यक्ष और कलाकार, दोनों ने प्रति पुरा समान उद्देश्य की पूर्ति की। उदाहरण के लिए कला में शिव के निम्नलिखित रूप मिलते हैं—पुष्पार्थि, अर्धनारीवार, नदीजलावक, गंगा, हरिहर, दमान्तक, अभूतशिव, पोषशिव, नारीलिख, उषामहेश्वर, जयमातिनेच, राधाप्रजातुप, वर्तुपति, एकादशदेव, युग-व्याय, मूर्तिनय श्राव। कला के इन रूपों की व्याख्या भारतीय धर्म तत्त्व में प्राप्त होती है और यदि ठीक प्रकार से देखाया तो कला श्रृंगार का एक ही जीवन प्रकार है।

देव

भारतीय कला देवताओं के चरणों में एक समर्पण है। सुपुरुष, स्वरूप और प्राचीन देवबुद्ध में स्वरूप देवता निर्वाचित करते हैं। सुपुरुष एवं पुरुष का उल्लभ भाग ये तीनों देवसदन है। रूपों में मेद लाने पर भी यथार्थ एक ही है। एक ही देवताओं अनेक देव और सिद्ध योगियों के रूप में प्रकट होते हैं। वन्यजीव, अभ्यास वृक्षावन, नग, यत, नदी देवता सिद्ध दीप्तिकर भारी और जीत देवता हैं सब एक ही महादेव देव के विभिन्न रूप हैं।

रूप और अर्थ की एकता

भारतीय कला के अध्ययन के कई हिस्टोरिया हो सकते हैं, जैसे पुराणत्व गत समर्थन का
श्री वामुदेव शरण ग्रन्थावल

निर्मच्च, निर्मित्स की निविध, श्लोक, निर्दिष्ट, सांप्रदायिक प्रथ्युपद्धति, और सबूतार उस काल का प्रतीकात्मक अर्थ जैसे ज्येष्ठों के संस्कृति विकास में, वैसे ही भारतीय सौंदर्यविश्वास में, इस कला का सांस्कृतिक महत्व है। बाहर रुप का भी निश्चित महत्त्व है किन्तु वह मानवों की प्रभावशक्ति का साधन माना गया है। रूप को शिरौंड़ कहा जाय ग्रंथ कला का प्राचीन है। कालिदास ने शब्द या रूप को जगत माता और ग्रंथ को जगानिता कह कर कला की सांस्कृतिक प्रभावशक्ति की है—

वास्तविक निम्नुक्तो। वास्तविकप्रत्येक ज्ञात: पितारी वन्दे पार्वती परमेश्वरी।

जो जगत के माता पिता है वे ही कला के ग्रंथ और रूप के जनक जननी हैं। ग्रंथ और रूप का लक्ष्य जगत का तत्त्व निर्देशित है। दोनों ही भवानी किष्णु के दो रूप हैं। एक प्रथम रूप और दूसरे की विवेक रूप कह गया है। (किष्णु पुराण ६।१।१४) समस्त विवेक विनोद में मानवता ही निवास है जिसे सभी कहते हैं अर्थात् मनोरथों के हृदय में जो मनोरथ रहते हैं वे ही कला और साहित्य में मूर्ति होते हैं। यह भावना तीन प्रकार की होती है—

(१) ब्रह्मा भावना—जिसका तत्त्व है विश्वासिक प्रथम एक और भवानी मनोरथ जो ब्रह्मा के समान निर्माण और सांस्कृतिक है। न ही तो सब रूपों और मनोरथों का मूल छोटा है।

(२) कर्मभावना—उपजाति देवों से लेकर मनोरथ एवं इतर प्रागृहवियों तक के जो प्राकृत मनोरथ हैं वे इसके प्रति आत्म हैं।

उभय भावना:—

इसमें विश्वासिक ब्रह्म तत्त्व और मानवी कर्म इन दोनों का संयोग अभ्यस्त है। केवल कर्मभावना प्रयत्न नहीं है। यदि कला की सीमा वहीं तक हो तो कला का सीमांत सुख जाने गया। और वह चित्रों के समाजन निरीक्ष ठंडी रहा जाने गया। कला प्रारम्भ की भीतरी बनती है जब उसके संस्कार विश्वास शरीर में भावात्मक वर्णण प्रभाव करता है। कला रूप में भावात्मक दृष्टि की प्रतिश्रुति ही कला की सच्ची प्रमूहन प्रतिश्रुति है। मानवी कर्म के साथ ब्रह्मा ज्ञान के समस्त ही ही राम, ज्ञान, दुःख महावीर, बनते हैं जो कला के सच्चे भावात्मक हैं।

कला के रूपों के मूल में लिखे हुए सूचन ग्रंथ का परिश्रम प्राप्त करने से कला की सीमाँत-नुभूति पूर्व और गम्भीर बनती है यहीं भारतीय विचार माना है। विद्वानों के विचार केवल सांस्कृतिक या चालात्मक सीमाओं विधिन है। उन प्रथम में कला की सीमा उस स्त्री के समान है जो अपना पति न पर सकता है। केवल रूप को कवि ने स्थितित कहा है किन्तु प्राचीन ग्रंथ के साथ इसी पृष्ठीय बना जाता है और विश्ववर्ती को भीतर जो ब्रह्मात्मक विश्व रूप है उसके व्याख्यान से विवेकुद्धि होती है। जैसे प्रारंभ धर में प्रथित होकर उसे देख कर देखा है वैसे ही कला के भाव से चित्र में जो भाव अवगत या या विभ्रत होते हैं उनके मन का मैल बना जाता है—

तथा रूप विश्ववश्यर तत्त्व योग पुजारूपः, विश्वात्मक विश्ववश्यर सर्वे किष्किष्क नाशनायुः।
यथानिष्ठ नृत्य शिक्ष: क्षंदकान्ति सानिल: । थत: विश्वात्मकं सन्तििततिः।
(किष्णु पुराण ६।३।३७-३४)

कला का और रसिक दोनों केवल ध्यान और मन की रक्षा से ही कला की चाल का पूरा फल प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक मृत्ति का रासिक ध्यान धार्मिक या अध्यात्मिक अभिमुक्ति के लिए भर्तौर वह व्यवस्था का प्रतीक माना है।